ISSN No. 2583-3316

जलवायु अनुकूल कृषिवानिकी पद्धतियाँः सिद्धांत एवं उपयोगिता

सी. पी. राहंगडाले

इंदिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर

पत्राचारकर्ता : rchhatrapal87@gmail.com

परिचय

देश को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने में हरित क्रान्ति में कृषि वैज्ञानिकों तथा किसानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज बढ़ते हुए शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण के कारण कृषि योग्य भूमि का सिकुड़ता स्वरूप, वनकटाव के कारण बढ़ता भूमि क्षरण व ऊसरीकरण, कारखानों व वाहनों से निकलता जहरीला धुआँ फल, अनाज, ईंधन लकड़ी, इमारती लकड़ी, चारा रेशा इत्यादि मानव की विभिन्न आवश्यकतायें ऐसे विकल्प खोजने को बाध्य करती है, जिनसे उपर्युक्त सभी समस्याओं के समाधान हो और साथ-साथ हमारे प्राकृतिक संसाधन जैसे भूमि,जल,वायु वन आदि सभी स्वच्छ रहें। इन विकल्पों में कृषि-वानिकी प्रणाली के अन्तर्गत खेती करना एक बहुत ही सराहनीय कार्य है क्योंकि प्रति इकाई अधिक उत्पादकता के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों का टिकाऊ प्रबन्धन भी सम्भव है। बहुउद्देशीय वृक्षों जैसे शीशम, बबूल, सुबबूल, खेजडी, खमेर, सफेदा, नीम, सिरस, अर्जुन इत्यादि के नीचे खाली स्थान में कृषि फसलों, सब्जियों, तिलहनों तथा मसालों आदि को उगाया जाता है।

कृषिवानिकी प्रणाली बनाम टिकाऊ खेती

कृषिवानिकी पद्धति भूमि उपयोग पर आधारित कृषि उत्पादन की वह प्रणाली है, जिसके अन्तर्गत वृक्षों फसलों एव पशुओं को इस प्रकार सम्मिलित किया जाता है, जो वैज्ञानिक विधि से सृदृढ़, पर्यावरणीय वांछित प्रयोग करने में सही तथा किसानों को स्वीकार्य हो। टिकाऊ खेती कृषि उत्पादन की वह पद्धति है, जो एक लम्बे समय तक उच्च गुणवत्ता वाली निम्नलिखित विशेषतायें रखती हो।

- जो पर्यावरणीय गुणवत्ता तथा कृषि आधारित संसाधनों में वृद्धि करे।
- मानव जाति को भोजन ईधन, चारे तथा रेशें की पूर्ति करे।
- आर्थिक स्थिरता प्रदान करें,और किसान एवं सम्पूर्ण समाज हेतु जीवन स्तरीय गुणवत्ता में वृद्धि करें।

कृषिवानिकी के सिद्धांत

कृषिवानिकी को अपनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किस प्रकार के पेड़ वहाँ की जलवायु के अनुकूल हैं व इनकी सामाजिक आवश्यकता कितनी है और पेड़ों के साथ किस प्रकार की फसल उचित व उपयोगी होगी इत्यादि। कृषिवानिकी को सफल बनाने हेतु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जलवायु एवं भूमि के अनुसार पेड़ एवं फसल का चुनाव किया जाए। पेड़ एवं फसल भी एक दूसरे के अनुरूप हों, जिससे उन्हें एक साथ उगने पर अधिक उत्पादन मिल सके। पेड़ों व फसलों के बीच पोषक तत्वों, वायु व प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा कम करने के दृष्टिकोण से समय-समय पर पेड़ों को काटते-छाँटते रहना चाहिए। इस सब के लिए किसानों को मिट्टी, जल एवं वृक्षों सम्बन्धी अच्छी जानकारी होना जरुरी है। शोधकर्ताओं के अध्ययन द्वारा यह ज्ञात है कि भारत के अनेक प्रान्तों (पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश) में कृषिवानिकी से सामान्य कृषि की अपेक्षा 20 गुणा अधिक उत्पादन मिला है। इन प्रदेशों में पॉपलर इत्यादि को मेढ़ों पर लगाने से फसल व लकड़ी कुल उत्पादन सामान्य कृषि से अधिक था। कृषिवानिकी पद्धति में सामान्य कृषि की अपेक्षा अधिक उत्पादन होता है क्योंकि बहुवर्षीय पेड़ों में प्रकाश-संश्लेषण की अधिक क्षमता होती है। बहुवर्षीय पेड़, फसलों को उपयुक्त जलवायु प्रदान करते हैं। बहुवर्षीय पेड़ों की जड़ें बहुत गहराई तक जाती हैं और इस कारण पेड़ भूमि की निचली सतहों से पोषक तत्वों को ग्रहण करके पोषक तत्वों का पुनः चक्रण करते हैं।

सामान्यतः देखा गया है कि जब इमारती लकड़ी देने वाले पेड़ों को एक साथ उगाया जाता है, तो फसल उत्पादन पर प्रतिकूल पड़ता है। ऐसा भी देखा गया है कि कभी-कभी फसल

की पैदावार 50 प्रतिशत तक घट जाती है, जिसका कारण यह है कि फसलों एवं पेड़ों के बीच, प्रकाश, नमी व पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा होती है। उचित प्रकार के पेड़ों एवं फसलों के चुनाव द्वारा इस प्रतिस्पर्धा को कम किया जा सकता है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण वाले पेड़ों को कृषिवानिकी पद्धति में शामिल करने से भूमि की नाइट्रोजन को बढ़ाया जा सकता है, जिससे भूमि की उर्वरा क्षमता में सुधार होता है। कृषिवानिकी द्वारा उत्पादन क्षमता में वृद्धि होने से मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः ही कर लेता है। कृषिवानिकी पद्धति, सामान्य कृषि प्रणाली से अधिक लाभदायक एंव महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस प्रणाली में लगाये गए वृक्ष फल, लकड़ी एवं चारा प्रदान करने के साथ-साथ भूमि के क्षरण को भी रोकते हैं और फसलें किसान की आर्थिक स्थिति को सुधारने में मदद करती हैं।

कृषिवानिकी की उपयोगिता

- आवश्यक ईधन व लकड़ी की पूर्ति।
- किसानों को कम समय में फल, खाद्यान्न तथा नकद फसलों की उपज सम्भव।
- इमारती लकड़ी तथा बाँस की आपूर्ति।
- भेड़, बकरी तथा ऊँटों को पूर्णतः अथवा अंशतः चारे की पूर्ति सम्भव।
- भूमि के लिये हरी खाद तथा कार्बनिक खाद उत्पादन करके उपजाऊ शक्ति बढाने में सक्षम।
- वायु तथा जल से होने वले मृदा क्षरण को रोकने में सहायक।
- वृक्षों द्वारा वायु अवरोधक का कार्य करने से कृषि फसलों को तूफान से सुरक्षा तथा बाह्य जानवरों से होने वाले नुकसान से भी सुरक्षा।
- मृदा तथा सूक्ष्म जलवायु में नमी संरक्षण तथा शीतलता।
- प्राकृतिक संसाधनों जैसे-भूमि, जल, वायु, तथा सूर्य की रोशनी का उचित उपयोग।
- ग्रीष्म ऋतु में खाद्यान्न फसलों को अनुकूल जलवायु तथा गर्मी से राहत।
- गर्मी, आँधीं कम वर्षा, ओले तथा अन्य विपदा की स्थिति में भूमि से कुछ न कुछ वापसी होने की गारन्टी।
- वृक्षों की लम्बी जडों से भूमि की निचली सतह से पोषक तत्वों का खिंचाव तथा अनुकूल मृदा वातावरण।
- उसरीय तथा अम्लीय भूमियों में सुधार।
- रोजगारों के अवसरों में वृद्धि।
- पर्यावरण के बिगड़ते संतुलन पर रोक।
- कृषि वानिकी प्रणाली मधुमक्खी, लाख तथा सिल्क के कीड़े पालन द्वारा ग्रामीण उद्योग धन्धों में सहायक।
- वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणलियों द्वारा भमि का टिकाऊ उपयोग व प्रबन्धन।

कृषिवानिकी पद्धति के विभिन्न रूप : कृषिवानिकी में अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं-

कृषि उद्यानिकी पद्धति : आर्थिक दृष्टि एवं पर्यावरण दृष्टि से यह सबसे महत्वपूर्ण एवं लाभकारी पद्धति है। इस पद्धति के अन्तर्गत शुष्क भूमि में अनार, अमरूद, बेर, किन्नू, कागजी नींबू, मौसमी, 6-6 मीटर की दूरी पर और आम, आँवला, जामुन एवं बेल को 8-10 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। बैंगन, टमाटर, भिण्डी, फूलगोभी, तोरई, लौकी, सीताफल, करेला आदि सब्जियाँ और धनिया, मिर्च, अदरक, हल्दी, जीरा, सौंफ एवं अजवाइन आदि मसालों की फसलें सुगमता से ली जा सकती हैं। इससे कृषकों को फल के साथ-साथ अन्य फसलों से भी उत्पादन मिल जाता है, जिससे कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। साथ ही फल वृक्षों की काट-छाँट से जलाऊ लकड़ी और पत्तियों द्वारा चारा भी उपलब्ध हो जाता है।

कृषि-वन पद्धति : इस पद्धति में बहुउद्देश्यीय वृक्ष जैसे शीशम, सागौन, नीम, देशी बबूल, यूकेलिप्टस के साथ-साथ रिक्त स्थान में खरीफ में संकर वार, संकर बाजरा, अरहर, मूंग, उरद, लोबिया तथा रबी में गेहूँ, चना, सरसों और अलसी की खेती की जा सकती है। इस पद्धति के अपनाने से इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी, खाद्यान्न, दालें व तिलहनों की प्राप्ति होती है। पशुओं को चारा भी उपलब्ध होता है।

उद्यान-चारा पद्धति : यह पद्धति उन स्थानों के लिये अत्यन्त उपयोगी है जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध न हों और श्रमिकों की समस्या भी हो। इस पद्धति में भूमि में कठोर प्रवृत्ति के वृक्ष, जैसे- बेर, बेल, अमरूद, जामुन, शरीफा, आँवला इत्यादि उगाकर वृक्षों के बीच में घास जैसे - अंजन, हाथी घास, मार्बल के साथ-साथ दलहनी चारे जैसे स्टाइलो, क्लाइटोरिया इत्यादि लगाते हैं। इस पद्धति से फल एवं घास भी प्राप्त होते है और साथ ही भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त भूमि एवं जल संरक्षण भी होता है। भूमि में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि भी होती है।

ISSN No. 2583-3316

वन-चरागाह पद्धति : इस पद्धति में बहुउद्देश्यीय वृक्ष जैस-अगरत खेजड़ी, सिरस, अरू, नीम, बकाइन इत्यादि की पंक्तियों के बीच में घास जैसे- अंजन घास, मार्बल और दलहनी चारा फसलें जैसे-स्टाइलो और क्लाइटोरिया को उगाते हैं। इस पद्धति में पथरीली बंजर व अनुपयोगी भूमि से ईंधन, चारा, इमारती लकड़ी प्राप्त होती है। इस पद्धति के अन्य लाभ है- भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि, भूमि एवं जल संरक्षण, बंजर भूमि का सुधार तथा गर्मियों में पशुओं को हरा चारा उपलब्ध होता है, जिससे दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होती है।

कृषि-वन-चरागाह : यह पद्धति भी बंजर भूमि के लिये उपयुक्त है। इनमें बहुउद्देश्यीय वृक्ष जैसे सिरस, केजुएरीना, बकाइन, शीशम, देसी बबूल इत्यादि के साथ खरीफ में तिल, मूँगफली, बाजरा, मूँग, उड़द, लोबिया और बीच-बीच में सूबबूल की झाड़ियाँ लगा देते है, जिनसे चारा प्राप्त होता है। जब बहुउद्देश्यीय वृक्ष बड़े हो जाते हैं, तो फसलों के स्थान पर वृक्षों के बीच में घास एवं दलहनी चारे वाली फसलों का मिश्रण लगाते हैं। इस प्रकार इस पद्धति से चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी व खाद्यान्न की प्राप्ति होती है और बंजर भूमि भी कृषि योग्य हो जाती है।

कृषि-उद्यानिकी-चरागाह : इस पद्धति में आँवला, अमरूद, शरीफा, बेल, बेर के साथ-साथ घास एवं दलहनी फसले जैसे- मूँगफली, मूँग, उड़द, लोबिया, ग्वार इत्यादि को उगाया जाता है। इस पद्धति से फल, चारा, दाल इत्यादि की प्राप्ति होती है, साथ ही भूमि की उर्वरा शक्ति में भी वृद्धि हो जाती है।

कृषि-वन-उद्यानिकी पद्धति : यह एक उपयोगी पद्धति है, क्योंकि इसमें मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के बहुउद्देश्यीय वृक्ष लगाते हैं और उनके बीच में उपलब्ध भूमि पर फल वृक्षों के साथ-साथ फसलें भी लगाते हैं। इस पद्धति से खाद्यान्न, चारा और फल भी प्राप्त् होते हैं।

मेड़ों पर वृक्षारोपण : इस पद्धति में खेतों के चारों ओर निर्मित मेड़ों पर करौंदा, फालसा, जामुन, नीम, सहजन, रामकाटी, करघई इत्यादि की अतिरिक्त उपज प्राप्त् की जा सकती है। इस पद्धति से चारा, ईंधन इमारती लकड़ी भी प्राप्त होती हैं और भूमि सरंक्षण भी होता है।

कृषिवानिकी में फसलों वृक्षों का चुनाव

कृषिवानिकी के उद्देश्य से वृक्षों की प्रजातियों का चुनाव स्थान, जलवायु, श्रमिक उपलब्धता, उत्पाद की बाजार माँग, सिंचाई जल की उपलब्धता, स्थानीय रूचि इत्यादि पर निर्भर करती है। फिर भी कृषिवानिकी प्रणाली के अन्तर्गत वे वृक्ष शमिल किये जाने चाहियें, जिनका बहुउद्देशीय उपयोग होता हो तथा जो कृषि फसलों को कम से कम हानि पहुँचाते हों। कुछ वृक्ष ईधन, लकड़ी तथा इमारती लकड़ी उत्पादन की दृष्टि से कुछ वृक्ष चारे उत्पादन की दृष्टि से तथा कुछ वृक्ष कागज उद्योग के लिये लुगदी उत्पादन के उद्देश्य से लगाये जाते हैं। शीशम, नीम, खैर, सिरस, साल, बहेडा, अर्जुन, बबूल सबबूल इत्यादि वृक्ष बहुउद्देशीय मांग होने के कारण, पोपलर प्लाई उद्योग तथा सफेदा, कैजुरिना, बबूल आदि ईधन लकड़ी के उद्देश्य से लगाये जाते हैं।

वृक्षों के नीचे फसलों को बोने के लिये वृक्षों की प्रतिवर्ष छँटाई करनी अति आवश्यक है। इसके अलावा छाया पसन्द करने वाली फसलें जैसे हल्दी, अदरक, पालक आदि फसलें इन वृक्षों के नीचे पहले तीन-चार वर्षों तक आसानी से लगा सकते हैं। पहले दो वर्षों में गेहूँ, मक्का, जौ, जई, अरहर, मूंग, उड़द तथा विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ आसानी से इन वृक्षों के नीचे उगाई जा सकती हैं। पोपलर जैसे वृक्ष जो सर्दियों मे अपनी पत्तियाँ नीचे गिरा देते हैं, के साथ आलू, गेहूँ, गन्ना, गोभी, टमाटर बैंगन, बहुवर्गीय सभी फसलें आसानी से उगाई जा रही हैं। इस प्रणाली में फसलों को उगाने में एक सावधानी अवश्य रखनी है कि वृक्षों की पंक्तियों में 5-6 मीटर का फासला अवश्य रखें ताकि कृषि क्रियायें करने के लिये टैक्टर, हल, बैल, आदि सुगमता से वृक्षों के बीच चल सकें तथा वृक्षों को विशेष हानि भी न हो।

कृषिवानिकी एवं भूमि संरक्षण

पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने के लिए वृक्षारोपण बहुत जरुरी है। कृषिवानिकी प्रणाली के अंतर्गत लगाये गए वृक्ष वायुमंडल को स्वच्छ बनाने में मदद करते हैं, ये वृक्ष वायुमंडल में फैली प्रदूषित एवं हानिकारक गैसों की मात्रा को कम करके पर्यावरण-संतुलन को बनाये रखते हैं। इसके साथ-साथ वृक्ष मृदा-अपरदन (मिट्टी का कटाव) को भी रोकते हैं। यह मिट्टी की उर्वरा-क्षमता को बढ़ाने एवं बनाए रखने में भी मददगार साबित हुए हैं।

कृषिवानिकी एवं औद्योगिकीकरण

हमारे देश में अनेक उद्योग-धंधे वृक्षों व वानस्पति सम्पदा पर निर्भर हैं, जिन्हें यह कच्चा माल प्रदान करते हैं। कृषिवानिकी प्रणाली के अंतर्गत वृक्षों पर आधारित अनेक औद्योगिक इकाइयाँ

ISSN No. 2583-3316

मानव को रोजगार प्रदान करने के साथ-साथ उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती है। कृषिवानिकी से सम्बन्धित प्रमुख उद्योग-रोजगार निम्न हैं:

- **कागज उद्योग :** इस उद्योग में विभिन्न प्रकार के पौधों जैसे-बांस, पॉपलर, चीड़ इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।
- **पत्तल उद्योग :** इस उद्योग में ढाक पलाश के पत्तों का प्रयोग किया जाता है। यह वृक्ष बंजर भूमि में भी उगाया जा सकता है।
- **औषधि उद्योग :** विभिन्न प्रकार के औषधीय वृक्षों को भी कृषिवानिकी के अंतर्गत लगाया जाता है। जिनमें आँवला, बेल, अशोक, अर्जुन, नीम करंज, हरड़, बहेड़ा इत्यादि प्रमुख हैं।
- **माचिस उद्योग :** माचिस की तीली बनाने में प्रयोग किये जाने वाले वृक्षों में सेमल एवं पॉपलर प्रमुख हैं, इन्हें भी कृषिवानिकी में उगाया जाता है।
- **लकड़ी उद्योग :** कृषिवानिकी पद्धति के अंतर्गत उगाये जाने वाले पौधों से ईधन के साथ-साथ बहुयोगी इमारती लकड़ी भी प्राप्त होती हैं, जिसका प्रयोग फर्नीचर, नाव, पानी के जहाज, खिलौनों इत्यादि में किया जाता है। इसमें साल, सागौन, शीशम, चीड़ इत्यादि की लकड़ियाँ प्रमुख रूप से उगायी की जाती हैं।

निष्कर्ष

कृषिवानिकी का भविष्य बहुत उज्जवल है। कृषिवानिकी अपनाकर कृषि उत्पादन को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। पेड़ों की समय-समय पर कटाई-छँटाई करके जलाने के लिए लकड़ी, पशुओं के लिए हरा तथा नीचे बिछाने के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त की जा सकती है। कृषिवानिकी से न केवल भूमि की जल-धारण क्षमता बढ़ती है अपितु भूमि और अधिक उपजाऊ हो जाती है। फलीदार समूह के वृक्ष भूमि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होते हैं। आजकल कई क्षेत्रों में कृषि-वानिकी द्वारा कृषि मजदूरों को सतत रोजगार भी प्रदान किया जा रहा है। इस प्रणाली को अपनाने से भूमि की उपयोगिता व महत्ता बढ़ती जाती है और किसी एक फसल के नष्ट हो जाने पर भी अन्य फसलों से उत्पादन व आमदनी के द्वार खुले रहते हैं, जिससे कि सालाना फसलों के मुकाबले कृषकों को खेती में जोखिम व नुकसान की सम्भावनाये न्यूनतम हो जाती हैं।

❖❖